निर्णय सुरक्षित रखने की आड़ में होती न्याय में देरी

अक्सर हम सुनते हैं कि किसी विशेष मामले पर न्यायालय ने निर्णय 'सुरक्षित' रखा है। इसका सही अर्थ क्या है, और इस प्रावधान का उपयोग कितनी ईमानदारी से किया जा रहा है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायालधीश की इस प्रावधान पर आई टिप्पणी ने आम जनता का ध्यान इस ओर खींचा है।

कुछ बिंदु -

- न्यायालयों में कई जगह 'लैटिन' के शब्द प्रयोग में आते हैं। उनमें एक शब्द 'एक्सटेम्पोर' है, जिसका अर्थ त्वरित है। इसके विपरीत 'क्यूरिया एडविसरिया बुल्ट' है। इसका उपयोग उन मामलों में किया जाता है, जहां न्यायालय 'सलाह लेना चाहता है', या उसे अपना निर्णय देने से पहले विचार करने के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है। यह प्रावधान पूरी तरह से अस्पष्ट रहा है। साथ ही, निर्णय लिखने से पहले मामलों पर विचार करने के लिए न्याालयों द्वारा समय की आवश्यकता की प्रथा लगभग पूरी तरह से आदर्श बन गई है।

- इसी प्रथा को रोकने के लिए मुख्य न्यायाधीश ने कदम उठाया है। उन्होंने उच्च न्यायालयों से उन मामलों का विवरण मांगा है, जिनमें फैसले तीन महीने से अधिक समय से सुरक्षित रखे गए थे।

- जवाब में, संभवतः इन मामलों की संख्या की अधिक्ता को कम करने के लिए, कुछ न्यायाधीशों ने चतुराई से कुछ मामलों को 'आंशिक रूप से सुना हुआ' घोषित कर दिया। इसका अर्थ है कि मामले में निर्णय को सुरक्षित रखे हुए अगर छः महीने बीत गए हैं, तो पक्षकार मामले को एक नई पीठ के द्वारा फिर से सुनवाई के लिए आवेदन कर सकते हैं। इस स्थिति में, वादियों को फिर से वकीलों को नियुक्त करना होगा, नए सिरे से पेश होना होगा।

इस प्रकार से, न्याय प्रक्रिया का यह उपाय, समाधान की जगह समस्या बन गया है। ज्ञातव्य हो कि भारतीय न्यायालयों में मुकदमेबाजी का बड़ा हिस्सा जटिल नहीं है। सामान्य मामलों में न्यायाधीशों को आमतौर पर आगे विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। फिर भी लगभग पूरी तरह से यह होता जा रहा है। वह भी तब; जब अधीनस्थ न्यायालयों

के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता ने सामान्य परिस्थितियों में निर्णय सुनाने के लिए एक महीने की समय सीमा, और असाधारण मामलों में दो महीने निर्धारित किए है। आपराधिक मामलों के लिए, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता ने समय सीमा 45 दिन तय की है। एक ऐतिहाहिसक फैसले में, उच्चतम न्यायलय ने सभी उच्च न्यायालयों पर एक समान समयसीमा लागू की कि निर्णय सुरक्षित रखने के बाद इसे तीन महीने के भीतर सुनाया जाना चाहिए।

कुल मिलाकर यही लगता है कि भारतीय न्यायालयों में समय सीमा कोई मायने नहीं रखती है। अनिवार्य समय सीमाओं के बावजूद न्यायालयों ने इसे निर्देशिका के रूप में व्याख्यायित किया है। मतलब कि वे इसे केवल एक सिफारिश मानते हैं, अनिवार्यता नहीं मानते हैं। न्यायालयों के इस रवैये को देखते हुए मुख्य न्यायाधीश का प्रयास प्रशंसनीय कहा जा सकता है। इस पर आगे भी कदम उठाया जाना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित अर्घ्य सेनगुप्ता और आदित्य प्रसन्ना के लेख पर आधारित। 13 अप्रैल 2024